अनुबोधन, खण्ड 2, अंक 2, अप्रैल–जून 2026, पृष्ठ 92–96
जर्नल वेबसाइटः ISSN: 3049-4184 (प्रिन्ट) 3108-1185 (ऑनलाइन)
https://anubodhan.org https://doi.org/10.65885/anubodhan.v2n2.2026.066

बुद्ध के शिक्षा दर्शन में नैतिकता और समभाववादी दृष्टि का दार्शनिक विश्लेषण

रवि रंजन कुमार *

प्राप्तिः 16 जून 2026 / संशोधित 24 जून 2026 / स्वीकृतः 25 जून 2026 / प्रकाशित ऑनलाइन: 27 जून 2026
Copyright © 2026 Author(s). Published by Siri Research Foundation. This is an open access article distributed under the Creative Commons Attribution International License (CC BY 4.0).

सारांश
मानव सभ्यता के इतिहास में गौतम बुद्ध को ऐसे दार्शनिक, चिंतक और नैतिक शिक्षक के रूप में स्मरण किया जाता है, जिन्होंने मानवीय जीवन को अज्ञान, दुःख, हिंसा, अन्याय और भेदभाव से मुक्त करने के लिए एक समग्र शिक्षा–दर्शन प्रस्तुत किया। भारतीय दर्शन के इतिहास में बौद्ध नैतिक दर्शन का विशिष्ट स्थान है। यह नितान्त यथार्थपरक एवं व्यवहारिक धर्म दर्शन है। महात्मा बुद्ध ने अपने उपदेशों का न केवल सैद्धान्तिक रूप में विवेचन किया बल्कि स्वयं सत्य की अनुभूति को यथार्थ धरातल पर रखते हुए अपने सुख और शान्ति की तनिक चिन्ता न करते हुए राजभवन के सुख वैभव को त्याग कर सम्पूर्ण मानवता को विश्वबन्धुत्व, करुणा, समता, अहिंसा एवं निष्काम कर्मयोग का संदेश दिया। भगवान बुद्ध भारतीय जनमानस के ही नहीं अपितु सम्पूर्ण मानव जाति के लिए महान वरदान थे। उन्होंने हमेशा दुःख के सबसे महत्त्वपूर्ण प्रश्न दुःख की समाप्ति और निरोध की ओर ले जाने वाले मार्ग पर चर्चा की। बौद्ध दर्शन को पूर्ण परम ज्ञान के रूप में जाना जाता है। बुद्ध ने हमें सिखाया कि परम ज्ञान प्राप्त करना हमारे अभ्यास या साधना का मुख्य उद्देश्य होता है।
मुख्य शब्दः अज्ञान, अहिंसा, नैतिक, निष्काम, विश्वबन्धुत्व, परम ज्ञान।

परिचय
बुद्ध के अनुसार मानव दुःख का मूल कारण "अज्ञान" है। अज्ञान ही लोभ, क्रोध, मोह, द्वेष, हिंसा, अहंकार, असमानता और वैमनस्य को जन्म देता है। इसलिए बुद्ध के शिक्षा–दर्शन का प्रथम लक्ष्य अज्ञान–निवारण तथा ज्ञान–प्राप्ति नहीं, बल्कि आत्मबोध, चित्त–शुद्धि और कर्म–शुद्धि है। उनका सम्पूर्ण शिक्षण–मूल्य इस तथ्य में निहित है कि मानव–जीवन का वास्तविक उत्थान बाह्य प्रदर्शन से नहीं, वरन् उसके आंतरिक विकास, धैर्य, संयम, करुणा और सम्यक् आचरण से सम्भव है। बुद्ध के नैतिक शिक्षा में महत्त्वपूर्ण आधारशिला है "अष्टांगिक मार्ग" और "पंचशील"। अष्टांगिक मार्ग में आठ ऐसे नैतिक स्तम्भ

* सीनियर रिसर्च फेलो (यू० जी० सी०), दर्शनशास्त्र विभाग, नव नालन्दा महाविहार, (सम-विश्वविद्यालय), संस्कृति मन्त्रालय, भारत सरकार, नालन्दा, बिहार

✉ रवि रंजन कुमार, E-mail: raviraj48162907@gmail.com

हैं, जो शिक्षा को चरित्र–निर्माण और आत्म–प्रकाश का साधन बनाते हैं।[1] ये सभी तत्त्व व्यक्ति के भीतर आत्म–नियंत्रण, संकल्प–शक्ति, सत्य प्रियता, अहिंसात्मक व्यवहार और मानसिक अनुशासन को विकसित करते हैं। बुद्ध ने अष्टांग मार्ग के रुप में जिस आध्यात्मिक और नैतिक अनुशासन का मार्ग बतलाया है, वह चार आर्य सत्यों में प्रतिपादित चतुर्थ आर्य सत्य "दुःख निरोध मार्ग" का व्यावहारिक रूप है। छात्र अनुशासन के दृष्टिकोण से भी यह समान रूप से उपयोगी है। इस मार्ग के निम्न आठ अंग हैं– **सम्यक् दृष्टिः**– अविद्या के कारण आत्मा तथा संसार के सम्बन्ध में मिथ्या दृष्टि की उत्पत्ति होती है। इस कारण अविद्या ही समस्त दुःखों का मूल कारण है। अविद्या से ही मिथ्या दृष्टि उत्पन्न होती है, जिसके कारण अनित्य, दुखद और अनात्म को नित्य सुखकर और आत्म रूप समझ लिया जाता है। छात्र को इस दृष्टि को छोड़कर वस्तुओं के यथार्थ स्वरूप पर सतत ध्यान रखना चाहिए। इसी को सम्यक् दृष्टि कहते हैं। **सम्यक् संकल्पः**– यह सम्यक् दृष्टि की ही उपज है। यह त्याग के लिए प्रबल इच्छा है, सबके साथ मिलकर प्रेम पूर्वक जीवन बिताने की आशा एवं यथार्थ मनुष्य जाति के निर्माण की महत्त्वाकांक्षा है। जो अशुभ है उसे न करने का संकल्प अर्थात राग, द्वेष वर्जित संकल्प ही सम्यक् संकल्प है। सम्यक् संकल्प के उपरांत जिज्ञासु को सम्यक् वाक् का अभ्यास करना चाहिए। **सम्यक् वाकः**– सम्यक् वाक् का तात्पर्य है असत्य से दूर रहना, किसी की चुगली न करना एवं निरर्थक वार्तालाप से दूर रहना।[2] इस प्रकार सत्य एवं प्रिय वचनों का प्रयोग ही सम्यक् वाक् है। दूसरों की निंदा करना, आवश्यकता से अधिक बोलना भी सम्यक् वाक् का विरोध करना है। इसलिए कहा गया है "मन को शांत करने वाला एक शब्द हजार निरर्थक शब्दों से श्रेयस्कर है।" **सम्यक् कर्मः**– सम्यक् कर्म निःस्वार्थ कर्म है। सम्यक् कर्म का अर्थ है बुरे कर्मों का परित्याग। बुद्ध के अनुसार बुरे कर्म तीन हैं– हिंसा, अस्तेय, इन्द्रिय भोग। इन तीनों कर्मों का प्रतिकूल सम्यक् कर्म है। सम्यक् कर्म अहिंसा युक्त भावना से किए जाते हैं अर्थात् सम्यक् कर्म उन कर्मों को कहा जाता है जो सांसारिक प्राणियों पर अनुकम्पा करने की आशय से किए जाते हैं। **सम्यक् आजीविकाः**– सम्यक् कर्म से सम्यक् जीवन बनता है जिसमें झूठ बोलना, धोखा देना एवं चालाकी का कोई स्थान नहीं है। धोखा, रिश्वत, लूट, अत्याचार इत्यादि अशुभ उपायों से जीविका निर्वाह करना महान पाप है। निर्वाण की प्राप्ति के लिए कटु वचन एवं बुरे कर्मों के परित्याग के साथ ही साथ जीवन–निर्वाह के लिए अशुभ मार्ग का परित्याग भी परमावश्यक है। **सम्यक् व्यायामः**– इन्द्रिय संयम तथा आत्म संयम का निरंतर अभ्यास करते हुए आंतरिक एवं बाह्य स्वास्थ्य का लाभ करना सम्यक् व्यायाम कहलाता है। सम्यक् व्यायाम उन क्रियाओं को कहते हैं जिनसे अशुभ मन स्थिति का अंत होता है तथा शुभ मन स्थिति का प्रादुर्भाव होता है। इसलिए मन को अच्छे भावों से परिपूर्ण रखना चाहिए तथा अच्छे भावों को मन में कायम रखने के लिए प्रयत्नशील तथा सक्रिय रहना चाहिए। **सम्यक् स्मृतिः**– सम्यक् स्मृति शरीर, वेदना, चित्त तथा धर्म की क्षणिकता का निरंतर स्मरण करते रहने को कहते हैं। भगवान बुद्ध का कहना है कि जिन विषयों का ज्ञान प्राप्त हो चुका है उन्हें बराबर स्मरण करते रहना चाहिए।[3] निर्वाण की कामना रखने वाले व्यक्ति को शरीर को शरीर, मन को मन, संवेदना को संवेदना समझना अत्यावश्यक है। शरीर को शरीर, मन को मन, संवेदना को संवेदना समझने का अर्थ है इन वस्तुओं को क्षणिक एवं दुखदायी समझना। इनमें किसी के सम्बन्ध में यह सोचना कि 'यह मैं हूँ' अथवा 'यह मेरा है' सर्वदा भ्रमात्मक है। शरीर की क्षण भंगुरता की ओर संकेत करते हुए बुद्ध ने कहा है कि श्मशान में जाकर शरीर की नश्वरता को देखा जा सकता है। इस प्रकार नाशवान वस्तुओं की स्मृति ही सम्यक् स्मृति है। उपर्युक्त सात गुण जिस छात्र के चरित्र और जीवन के अंग बन जाते हैं, वह सम्यक् समाधि में प्रविष्ट होने की योग्यता प्राप्त कर लेता है। **सम्यक् समाधिः**– सम्यक् समाधि निर्वाण प्राप्ति की प्रथम अवस्था है। अष्टांगिक मार्ग का अंतिम चरण है, समाधि। बुद्ध का कहना है कि उपर्युक्त नियमों के अनुसार चलकर जो मनुष्य अपने बुरे चित्त प्रवृत्तियों को दूर कर लेता है वह सम्यक् समाधि में प्रविष्ट होने के योग्य हो जाता है।[4] चित्त की एकाग्रता को समाधि कहते हैं।[5] समाधि वह है जिससे मन के विक्षेपों को हटाया जा सके। सभी प्रकार की बुराइयों

---

[1] मज्झिमनिकाय 1/5/4 अनु0 राहुल सांकृत्यायन, सारनाथः महाबोधिसभा, 1933

[2] चटोपाध्याय, सतीशचंद्र, पूर्वोक्त ग्रंथ, पृष्ठ 84.

[3] वहीं पृष्ठ 84.

[4] वहीं पृष्ठ 85.

[5] मज्झिमनिकाय 1/5/4 अनु0 राहुल सांकृत्यायन, सारनाथः महाबोधिसभा, 1933

को न करना और अच्छाइयों का सम्पादन करना, अपने चित्त को संयम रखना, यही बुद्ध की शिक्षा है।[6] सम्यक् समाधि की स्थिति प्राप्त कर लेने के उपरान्त श्रावक को सम्यक् ज्ञान हो जाता है और वह सम्यक् विमुक्ति प्राप्त कर लेता है।

बुद्ध के अष्टांगिक मार्ग को प्रज्ञा, शील, समाधि नामक विशेष अंगों में विभाजित किया जा सकता है। सम्यक दृष्टि और सम्यक संकल्प प्रज्ञा के अंतर्गत आते हैं। सम्यक् वाक्, सम्यक् कर्मान्त, सम्यक् आजीविका, सम्यक् व्यायाम शील के अन्तर्गत आते हैं। शेष दो मार्ग सम्यक् स्मृति और सम्यक् समाधि, समाधि के अन्तर्गत आते हैं। इस प्रकार महात्मा बुद्ध ने चार सत्यों के रूप में संसार का क्लेश मिटाने का एक अद्वितीय दर्शन हमारे समक्ष रखा है। बौद्ध नीतिशास्त्र एवं पंचशील सिद्धान्त का केन्द्रीय तत्त्व अहिंसा है। अहिंसा के अनुपालनार्थ सत्य, अचौर्य, ब्रह्मचर्य और नशा वर्जन इन पंचसूत्री पंचशील आचार की प्ररूपणा की गई है। पंचशील का मुख्य उद्देश्य अहिंसा का अनुपालन ही है। आज जहाँ कारण मात्र संसार हिंसा को अपना धर्म मानता है वहीं आज से 2500 वर्ष पहले बुद्ध ने मानव को अहिंसा का पाठ पढ़ाया था। भगवान बुद्ध ने संसार को अहिंसा का उपदेश दिया। वैदिक धर्म में यज्ञ–यज्ञादिक का बड़ा महत्त्व था। इसलिए यज्ञ में पशुओं की बलि दी जाती थी। महात्मा बुद्ध ने पशु हिंसा के विरुद्ध विद्रोह किया और घोषणा की कि यज्ञ–यज्ञादिक करना व्यर्थ है। मनुष्यों को पशुओं की हिंसा न करने की सलाह दी क्योंकि संसार में यदि कोई धर्म है तो केवल अहिंसा ही है। बुद्ध ने अहिंसा को परम धर्म माना अहिंसा परमों धर्मः।[7] अहिंसा का पालन आत्म विकास में बाधक कर्मों को रोकने के लिए तथा तदाधारित सत्यादि शीलों का परिपालन करने में है। इसमें व्यक्ति तथा समाज के उत्थान के लिए असत्य का त्याग, अनधिकृत वस्तु का अग्रहण तथा संयम का परिपालन समाविष्ट है। इसके अभाव में अहिंसा का विकास नहीं हो सकता। अहिंसा शब्द का शाब्दिक अर्थ हिंसा न करना है, किन्तु व्यापक रूप में अहिंसा का अर्थ है समाज में बैर विरोध बढ़ाने वाली वृत्तियों के नियंत्रण के लिए पंचशील सिद्धान्त का अनुशीलन किया जाये।

पंचशील के सिद्धान्त हैं: हिंसा न करना, चोरी न करना, व्यभिचार न करना, झूठ न बोलना और नशा न करना। शिक्षार्थी में यदि यह समग्र नैतिक दृष्टि विकसित हो जाती है, तो वह न केवल स्वयं का सुधार करता है, बल्कि समाज के भी कल्याण में सहयोगी बनता है। बुद्ध का मानना था कि नैतिक शिक्षा तभी प्रभावी है जब वह आत्मानुशासन पर आधारित हो। उनका आग्रह था कि व्यक्ति दूसरों के लिए नहीं, स्वयं के लिए नैतिक बने। इसलिए उन्होंने नैतिक शिक्षा को बाहरी नियंत्रण नहीं, बल्कि आंतरिक परिवर्तन का पर्याय माना। यही कारण है कि बौद्ध शिक्षा में "स्मृति" को विशेष महत्त्व दिया गया। स्मृति–भाव मानव को अपने विचार, वाणी और कर्म के प्रति सजग बनाता है तथा प्रलोभन से दूर रहने का विवेक प्रदान करता है। उनकी शिक्षण परम्परा में प्रज्ञा, करुणा, सम्यक् आचरण, समानता एवं मैत्री जैसे मानवीय गुण शिक्षा के मर्म के रूप में प्रतिष्ठित हैं। वर्तमान युग में जब शिक्षा–व्यवस्था मूल्य–संकट, प्रतिस्पर्धा, हिंसक प्रवृत्तियों, मानसिक तनाव और सामाजिक असमानताओं से जूझ रही है, बुद्ध का नैतिक एवं समभाववादी शिक्षा–दर्शन अत्यंत प्रासंगिक प्रतीत होता है। बुद्ध का मानना था कि शिक्षा मनुष्य को भीतर से बदल दे, उसके व्यवहार, भाषा, संकल्प और कर्म को मानवता की ओर उन्मुख करें। इसी कारण उनके शिक्षण में नैतिकता और समभाव प्रमुख आधार हैं। बुद्ध कालीन समाज में दो प्रकार की व्यवस्था प्रचलित थी। एक वर्ग वैदिक मान्यताओं पर निर्भर करती थी जिसके अनुसार समाज वर्ण व्यवस्था और जाति प्रथा पर निर्भर करता है। पूर्व काल में यह व्यवस्था कर्म के आधार पर निर्धारित की जाती थी फिर बाद में यह जन्म के आधार पर की जाने लगी। वैदिक मान्यताओं के आधार पर वर्ण चार वर्गों में विभाजित किया जाता है। ये चारों वर्ण ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य और शूद्र इसी क्रम में आते है। बुद्ध के शिक्षा–दर्शन में "समभाव" का अर्थ है सभी मनुष्यों को समान दृष्टि से देखना, किसी प्रकार का ऊँच–नीच, जाति–वर्ग, सम्प्रदाय या लैंगिक भेदभाव न करना, और प्रत्येक मनुष्य की गरिमा का सम्मान करना। सामाजिक समानता के संदर्भ में गौतम बुद्ध ने अपने धम्म में समता और बराबरी पर बहुत जोर दिया। बुद्ध ने अपने समय में व्याप्त जाति–भेद, अस्पृश्यता, धार्मिक रूढ़ियों और सामाजिक ऊँच–नीच का कड़ा विरोध किया। उन्होंने शिक्षा को सामाजिक न्याय का माध्यम माना। बुद्ध के अनुसार शिक्षा तभी सार्थक है, जब वह मानव के भीतर समदृष्टि, सह–अस्तित्त्व, सहिष्णुता, मैत्री और

---

[6] धम्मपद बुद्धवग्ग 5, अनु0 भिक्षु धर्मरक्षित, सारनाथ, 1922

[7] उपाध्याय, बलदेव, *बौद्ध दर्शन मीमांसा*, वाराणसीः चौखम्भा विद्याभारती, 2014, पृष्ठ 377

करुणा बोध विकसित करें। इस दृष्टि से बुद्ध की शिक्षा उन सभी भेदभावपूर्ण संरचनाओं का निषेध करती है, जहाँ मनुष्य को ऊँचा–नीचा समझा जाता है। उनका मानना था कि जाति भेद से समाज में असमानता का जन्म होता है और यह 'बहुजन हिताय, बहुजन सुखाय' के मार्ग में बाधक है। बुद्ध ने आचार और ज्ञान को मानव की श्रेष्ठता के लिए मुख्य कसौटी समझा था। सदाचारी और ज्ञानी पुरुष चाहे किसी जाति या किसी वर्ण का हो उसे वह श्रेष्ठ मानते थे।[8] इसलिए बुद्ध ने जाति भेद का निषेध किया था।[9] उनकी दृष्टि में ब्राह्मण और अब्राह्मण समान थे।[10] उनके अनुसार मनुष्य ना तो जन्म से चाण्डाल होता है और न ही ब्राह्मण।[11] वास्तव में सभी मानव मूल रूप से समान होते हैं। गौतम बुद्ध ने बताया की कोई व्यक्ति उच्च वर्ग का हो या कोई विशेष व्यक्ति क्यों न हो, कोई भी मृत्यु से नहीं बच सकता। ब्राह्मण, क्षत्रिय वैश्य और शूद्र कोई भी अमर नहीं है।[12] गौतम बुद्ध जाति के आधार पर किसी भी प्रकार का विभाजन नहीं मानते। बुद्ध के दर्शन की दृष्टि से सभी मनुष्य समान हैं और जन्म अथवा वर्ग के आधार पर मनुष्य में किसी प्रकार का भेदभाव नहीं है। बौद्ध धर्म में कर्म का अर्थ वैदिक कर्म काण्ड न होकर मनुष्य की समस्त कायिक, वाचिक और मानसिक चेष्टाओं से है, यही कर्म मनुष्य के दुःख–सुख का दाता है। बौद्ध धर्म कर्म प्रधान धर्म है और जो महत्त्व आस्तिक धर्म में ईश्वर का है वही महत्त्व बौद्ध धर्म में कर्म का है। ज्ञान प्राप्ति कर्म के ऊपर ही आधारित है। कर्म के आधार पर ही महात्मा बुद्ध ने चर्तुवर्णी शुद्धि का प्रतिपादन किया था। उनका उपदेश था कि जो भी मनुष्य चाहे वह ब्राह्मण हो, क्षत्रिय हो, वैश्य हो अथवा शूद्र हो, सम्यक् कर्म करेगा वही मोक्ष का अधिकारी होगा। तथागत बुद्ध ने कहा धर्म तभी सधर्म हो सकता है जब वह एक मानव और दूसरे मानव के बीच की दीवारों को गिरा दें।[13] धर्म तभी सधर्म हो सकता है जब वह यह शिक्षा दे कि किसी मानव का मूल्यांकन उसके जन्म से नहीं बल्कि कर्म से हो।[14] बुद्ध ने यह भी कहा कि धर्म तभी सधर्म है जब वह मानव के बीच समानता के भाव को अभिवृद्धि करें।[15] वर्ण व्यवस्था में दास प्रथा का प्रचलन था जो वैदिक काल से चली आ रही थी। इनका उल्लेख रामायण, महाभारत, उपनिषद, अर्थशास्त्र, वैदिक साहित्य तथा स्मृति ग्रन्थों में मिलता है। दासों को दास–कर्म कराया जाता था तथा हेय और निम्न दृ ष्टि से देखा जाता था। उपर्युक्त विवरण से यह स्पष्ट होता है कि भारतीय सामाजिक व्यवस्था में उच्च वर्ग निम्न वर्ग से दूरी बनाने के नियम बनाये थे। गौतम बुद्ध ने इसका विरोध करते हुए समतावादी सामाजिक व्यवस्था के प्रति सोच विकसित किया। गौतम बुद्ध ने सामाजिक परम्पराओं, अंधविश्वासों, आस्थाओं आदि का विरोध किया और ऐसी व्यवस्था की बात की जिसकी आधारशिला प्रज्ञा, मैत्री, करुणा तथा शील पर निर्भर करती थी। गौतम बुद्ध का समाज दर्शन समानता, स्वतंत्रता, बन्धुत्व और न्याय के मूल्य पर आधारित था। गौतम बुद्ध के समाज दर्शन ने स्त्री और पुरुष को समकक्ष लाकर खड़ा कर दिया। भगवान बुद्ध ने अपने ज्ञान के माध्यम से समाज के सभी वर्गों का कल्याण किया। बुद्ध का संघ आज भी सर्वश्रेष्ठ उदाहरण है, जहाँ जाति, धर्म, धन–संपत्ति का कोई भेद नहीं था। वहाँ केवल ज्ञान, आचार, अनुशासन और समभाव ही शिक्षित होने के आधार थे। बौद्ध कालीन शिक्षा में आध्यात्मिक विकास पर अधिक जोर न देकर नैतिकता अथवा शील पर अधिक ध्यान दिया गया है। वर्तमान समय में शिक्षा का उद्देश्य बालक का सर्वांगीण विकास करना है। वर्तमान समाज एवं परिस्थिति में ऐसे उद्देश्यों की उपायदेता बहुत बड़ी मात्रा में अर्थपूर्ण हो सकती है। आधुनिकीकरण के इस दौर में मनुष्य अपने आचार नैतिकता तथा संस्कार को पीछे छोड़ता चला आया है। अगर बौद्ध कालीन शिक्षा के उद्देश्यों एवं वर्तमान शिक्षा के उद्देश्यों को सामंजस्य किया जाये तो सामाजिक अन्तर्सम्बन्ध काफी हद तक सुदृढ़ हो सकते हैं। इससे अर्थपूर्ण तथा विकासोन्मुख समाज का निर्माण संभव हो सकता है।

8 सांकृत्यायन, राहुल, *महामानव बुद्ध विहार*, लखनऊः रिसालदार पार्क, 1956, पृष्ठ 94
9 कोसाम्बी धर्मानन्द, अनु0 जोशी श्रीपाद, *भगवान बुद्ध*, इलाहाबादः लोक भारती प्रकाशन, 1982, पृष्ठ 213
10 वहीं
11 सुत्तनिपात, 1/7/2, अनु0 भिक्षु धर्म रक्षित, सारनाथः महाबोधिसभा, 1951
12 सिंह, कुमार मुकेश, *बौद्ध धर्म का लोककल्याणकारी स्वरूप*, वाराणसीः भारतीय प्रकाशन, 2009, पृष्ठ 72
13 अम्बेडकर, बी0 आर0, अनु0 भदन्त आनंद कौसल्यायन, भ0 बु0 उ0 ध0 1991, पृष्ठ 237
14 वहीं, पृष्ठ 242
15 वहीं, पृष्ठ 244

निष्कर्ष

महात्मा बुद्ध की शिक्षा न केवल अतीत के लिए बल्कि आज के समय में भी अत्यधिक प्रासंगिक ओर आवश्यक है। उनका जीवन दर्शन जिसमें शांति, समरसता और सम्यक् दृष्टिकोण का समावेश है। बुद्ध की शिक्षा में सर्वश्रेष्ठ योगदान अहिंसा, शांति और समानता की अवधारणा है। आज के समाज में जहाँ हिंसा, असमानता और मानसिक तनाव एक आम समस्या बन चुकी है, उनके विचार हमें शांतिपूर्ण और स्थिर समाज की दिशा में मार्गदर्शन करते हैं। उन्होंने समाज के हर व्यक्ति को समान अधिकार देने की बात की, जो आज भी अत्यधिक प्रासंगिक है, खासकर जब हम जातिवाद, लिंगभेद और अन्य सामाजिक असमानताओं का सामना कर रहे हैं। महात्मा बुद्ध का दर्शन मानवता का दर्शन माना जाता रहा है आज अगर हम कहीं भी विश्व शांति, नैतिक प्रगति, मूल्य युक्त जीवन की बात करते हैं तो बुद्ध की शिक्षाओं का वर्णन जरूर करते हैं। बुद्ध का दर्शन आधारभूत रुप से नैतिक दर्शन है और यही विशेषता उसे अन्य दर्शनों से अलग स्वरूप प्रदान करता है। इसके इसी स्वरूप की वजह से यह दर्शन भारत में जन्म लेकर भी विश्व पटल पर अपनी पहचान बनाये हुए है। अतः महात्मा बुद्ध की शिक्षा का पालन करना न केवल व्यक्तिगत जीवन के लिए, बल्कि सम्पूर्ण समाज और संसार के लिए आवश्यक है, ताकि हम एक ऐसे समाज का निर्माण कर सकें जिसमें शांति, समरसता और नैतिकता की प्रधानता संभव हो सके।

सन्दर्भ–सूची

अम्बेडकर, बी0 आर0 अनु0 भदन्त आनंद कौसल्यायन. *भगवान बुद्ध और उनका धम्म*, 1991

उपाध्याय, बलदेव. *बौद्ध दर्शन मीसांसा.* वाराणसीः चौखम्भा विद्याभारती, 2014.

कोसाम्बी, धर्मानन्द, अनु0 जोशी श्रीपाद. *भगवान बुद्ध.* इलाहाबादः लोक भारती प्रकाशन, 1982

रक्षित, भिक्षु धर्म (अनु0). *सुत्तनिपात.* सारनाथः महाबोधिसभा, 1951.

रक्षित, भिक्षु धर्म (अनु0). *धम्मपद बुद्धवग्ग.* सारनाथ, 1922.

सांकृत्यायन, राहुल. *महामानव बुद्ध विहार.* लखनऊः रिसालदार पार्क, 1956

सांकृत्यायन, राहुल (अनु0). *मज्झिमनिकाय.* सारनाथः महाबोधि सभा, 1933

सिंह, कुमार मुकेश. *बौद्ध धर्म का लोककल्याणकारी स्वरूप*, वाराणसीः भारतीय प्रकाशन, 2009